Chapter पच्चीस

कृष्ण द्वारा गोवर्धन-धारण

इस अध्याय में वर्णन हुआ है कि जब व्रजवासियों ने इन्द्र-यज्ञ निरस्त कर दिया तो इन्द्र किस तरह क्रोधित हुआ, उसने किस तरह वृन्दावन में प्रलयंकारी वर्षा करके उन्हें दण्डित करना चाहा और भगवान् श्रीकृष्ण ने किस तरह गोवर्धन पर्वत उठाकर गोकुल की रक्षा की तथा वर्षा से बचाने के लिए

वे पर्वत को छाते की तरह सात दिनों तक धारण किये रहे।

अपने निमित्त होने वाले यज्ञ का विध्वंस होने से क्रुद्ध होकर तथा झूठे ही अपने को सर्वोच्च नियन्ता मानते हुए इन्द्र ने कहा, ''लोग प्राय: आत्म-साक्षात्कार के साधन दिव्य ज्ञान का अनुशीलन त्याग देते हैं और सोचते हैं कि संसारी सकाम यज्ञों द्वारा भवसागर को पार कर सकते हैं। इसी तरह ये गोप दर्प से उन्मत्त हो गये हैं और एक मूर्ख सामान्य बालक कृष्ण की शरण ग्रहण करके इन्होंने मेरा अपमान किया है।''

व्रजवासियों के इस मिथ्याभिमान को चूर करने के लिए इन्द्र ने संवर्तक नामक बादलों को भेजा जिनका कार्य संसार के संहार में सहायता करना है। उसने व्रजवासियों को वर्षा तथा ओलों से तंग करने के लिए उन्हें भेजा। इससे ग्वाल समुदाय अति विचलित हो उठा और वे सब कृष्ण की शरण में पहुँचे। कृष्ण समझ गये कि यह इन्द्र की करतूत है अतएव उन्होंने इन्द्र के मिथ्या अहंकार को चूर-चूर करने का निश्चय किया। इसीलिए उन्होंने अपने एक हाथ से गोवर्धन पर्वत को उठा लिया। तत्पश्चात् उन्होंने सारे ग्वालों को पर्वत के नीचे सूखे स्थान में शरण लेने के लिए बुलाया। वे लगातार सात दिनों तक पर्वत को इसी तरह उठाये रहे जब तक इन्द्र को कृष्ण की योगशक्ति का पता नहीं चल गया। तब इन्द्र ने बादलों को हट जाने का आदेश दिया।

जब ग्रामीण ग्वाले पर्वत के नीचे से बाहर आ गये तो कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को उसके स्थान पर फिर से रख दिया। सारे ग्वाले आनन्दमग्न थे और उनकी आँखों से अश्रु बह रहे थे तथा रोमांच हो रहा था। उन्होंने कृष्ण का आलिंगन किया और अपनी अपनी पद-स्थिति के अनुसार उन्हें आशीर्वाद दिया। स्वर्ग से देवताओं ने उन पर फूल बरसाये तथा उनकी प्रशंसा में गीत गाये।

श्रीशुक उवाच
इन्द्रस्तदात्मन: पूजां विज्ञाय विहतां नृप ।
गोपेभ्य: कृष्णनाथेभ्यो नन्दादिभ्यश्चुकोप ह ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुक: उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; इन्द्र:—इन्द्र; तदा—तब; आत्मन:—अपनी; पूजाम्—पूजा; विज्ञाय—जानकर; विहताम्—दूसरे को समर्पित की गई; नृप—हे राजन् (परीक्षित); गोपेभ्य:—ग्वालों पर; कृष्ण-नाथेभ्य:—कृष्ण को अपना स्वामी मानने वाले; नन्द-आदिभ्य:—नन्द महाराज इत्यादि पर; चुकोप ह—क्रुद्ध हुआ।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजा परीक्षित, जब इन्द्र को पता चला कि उसका यज्ञ सम्पन्न

नहीं हुआ तो वह नन्द महाराज तथा अन्य गोपजनों पर क्रुद्ध हो गया क्योंकि वे सब कृष्ण को अपना स्वामी मान रहे थे।

तात्पर्य : शुकदेव गोस्वामी इस अध्याय के प्रारम्भ में ही इन्द्र की मूर्खता तथा उसके क्रोध की बेहूदगी को प्रकट किये दे रहे हैं। इन्द्र इसलिए रुष्ट था क्योंकि वृन्दावनवासियों ने कृष्ण को अपना स्वामी मान लिया था। किन्तु तथ्य तो यह है कि श्रीकृष्ण न केवल वृन्दावनवासियों के स्वामी हैं अपितु इन्द्र समेत सम्पूर्ण जगत के स्वामी हैं। अत: इन्द्र की धृष्ट प्रतिक्रिया हास्यास्पद थी। यह कहावत ठीक ही है कि ''घमंडी का सिर नीचा होता है।''

गणं सांवर्तकं नाम मेघानां चान्तकारीणाम् ।
इन्द्रः प्रचोदयत्क्रुद्धो वाक्यं चाहेशमान्युत ॥ २॥

शब्दार्थ

गणम्—समूह; सांवर्तकम् नाम—सांवर्तक नामक; मेघानाम्—बादलों का; च—तथा; अन्त-कारिणाम्—ब्रह्माण्ड का अन्त करने वाले; इन्द्रः—इन्द्र ने; प्रचोदयत्—भेजा; क्रुद्धः—क्रुद्ध, नाराज; वाक्यम्—वचन; च—तथा; आह—कहा; ईश-मानी—झुठे ही अपने को सर्वोच्च नियन्ता सोचते हुए; उत—निस्सन्देह।

क्रुद्ध इन्द्र ने ब्रह्माण्ड का विनाश करने वाले बादलों के समूह को भेजा जो सांवर्तक कहलाते हैं। वह अपने को सर्वोच्च नियन्ता मानते हुए इस प्रकार बोला।

तात्पर्य : *ईश-मानी* शब्द यहाँ पर अत्यन्त सार्थक है। उद्धत इन्द्र अपने को ईश्वर मानता था अतएव उसने बद्धजीव जैसी विशिष्ट मनोवृत्ति का प्रदर्शन किया। बीसवीं सदी के अनेक विचारकों ने हमारी संस्कृति की व्यक्तिगत प्रतिष्ठा के अतिशय भाव पर ध्यान दिया है; यहाँ तक कि लेखकों ने ''मेरी पीढ़ी'' जैसा शब्द भी गढ़ा है। इस संसार में प्रत्येक व्यक्ति कम या ज्यादा *ईश-मान* (जिसमें वह अपने को ईश्वर मानता है) का दोषी है।

अहो श्रीमदमाहात्म्यं गोपानां काननौकसाम् ।
कृष्णं मर्त्यमुपाश्रित्य ये चक्रुर्देवहेलनम् ॥ ३॥

शब्दार्थ

अहो—जरा देखो तो; श्री—ऐश्वर्य के कारण; मद—नशे का; माहात्म्यम्—विस्तार; गोपानाम्—ग्वालों का; कानन—वन में; ओकसाम्—वास करने वाले; कृष्णम्—कृष्ण को; मर्त्यम्—सामान्य मनुष्य की; उपाश्रित्य—शरण ग्रहण करके; ये—जिन्होंने; चक्रुः—किया है; देव—देवताओं के प्रति; हेलनम्—अपराध।

[इन्द्र ने कहा] : जरा देखो तो सही कि जंगल में वास करने वाले ये ग्वाले अपने वैभव से

किस तरह इतने उन्मत्त हो गये हैं! उन्होंने एक सामान्य मनुष्य कृष्ण की शरण ग्रहण की है और इस तरह उन्होंने देवताओं का अपमान किया है।

तात्पर्य : वास्तव में इन्द्र यह कह रहा था कि ग्वालों ने उस कृष्ण की शरण में जाकर उसका अपमान किया है, जिसे वह *मर्त्य* समझ रहा था। निश्चय ही इन्द्र की यह बहुत बड़ी भूल थी।

यथाद्दढैः कर्ममयैः क्रतुभिर्नामनौनिभैः ।
विद्यामान्वीक्षिकीं हित्वा तितीर्षन्ति भवार्णवम् ॥ ४॥

शब्दार्थ

यथा—जिस तरह; अद्दढैः—अपर्याप्त; कर्म-मयैः—सकाम कर्म पर आधारित; क्रतुभिः—यज्ञों के द्वारा; नाम—नाममात्र को; नौ-निभैः—नावों की तरह कार्य करने वाले; विद्याम्—ज्ञान को; आन्वीक्षिकीम्—आध्यात्मिक; हित्वा—त्यागकर; तितीर्षन्ति—पार करने का प्रयास करते हैं; भव-अर्णवम्-थे ओचेअन् ओफ् मतेरिअल् एक्सिस्तेन्चे.

उनके द्वारा कृष्ण की शरण ग्रहण करना वैसा ही है जैसा कि लोगों द्वारा दिव्य आत्म-ज्ञान को त्यागकर सकाम कर्ममय यज्ञों की मिथ्या नावों में चढ़कर इस महान् भवसागर को पार करने का मूर्खतापूर्ण प्रयास होता है।

वाचालं बालिशं स्तब्धमज्ञं पण्डितमानिनम् ।
कृष्णं मर्त्यमुपाश्रित्य गोपा मे चक्रुरप्रियम् ॥ ५॥

शब्दार्थ

वाचालम्—बातूनी; बालिशम्—बालक; स्तब्धम्—उद्धत; अज्ञम्—मूर्ख; पण्डित-मानिनम्—अपने आपको चतुर मानने वाले; कृष्णम्—कृष्ण को; मर्त्यम्—मनुष्य को; उपाश्रित्य—शरण लेकर; गोपाः—ग्वालों ने; मे—मेरे विरुद्ध; चक्रुः—कार्य किया है; अप्रियम्—अनुचित।.

इन ग्वालों ने इस सामान्य मनुष्य कृष्ण की शरण ग्रहण करके मेरे प्रति शत्रुतापूर्ण कार्य किया है क्योंकि कृष्ण अपने को अत्यन्त चतुर मानता है किन्तु है, वह निरा मूर्ख, अकड़ू तथा बातूनी बालक।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार इन्द्र के अपमान के माध्यम से देवी सरस्वती कृष्ण की प्रशंसा कर रही हैं। आचार्य की व्याख्या है : "*बालिशम्* का अर्थ है 'बालक की भाँति किसी बनावट से रहित।' *स्तब्धम्* का अर्थ है कि वे किसी के समक्ष नतमस्तक नहीं होते क्योंकि उन्हें किसी को नमस्कार नहीं करना है। *अज्ञम्* का अर्थ है कि उन्हें कुछ और जानने के लिए शेष नहीं क्योंकि वे सर्वज्ञ हैं। *पण्डितमानिनम्* का अर्थ है कि वे ब्रह्मवादियों द्वारा अत्यधिक सम्मानित हैं तथा *कृष्णम्* का

अर्थ है कि वे परब्रह्म हैं जिनका दिव्य स्वरूप सनातन तथा आनन्दमय है। *मर्त्यम्* का अर्थ है कि यद्यपि वे ब्रह्म हैं किन्तु तो भी अपने भक्तों के स्नेहवश वे इस जगत में मानव रूप में प्रकट होते हैं।''

इन्द्र *वाचालम्* कहकर कृष्ण की निन्दा करना चाहता था क्योंकि उन्होंने कर्म मीमांसा तथा सांख्य दर्शन के विषय में अनेक निर्भीक तर्क प्रस्तुत किये थे यद्यपि वे उन तर्कों को स्वीकार नहीं करते थे। इसलिए इन्द्र ने उन्हें *बालिश* अर्थात् मूर्ख कहा। इन्द्र ने उन्हें *स्तब्ध* कहा क्योंकि उन्होंने अपने पिता के समक्ष भी निडर होकर भाषण किया था। इस तरह यद्यपि इन्द्र ने श्रीकृष्ण की आलोचना करने का प्रयास किया किन्तु भगवान् का चरित्र निर्दोष है और इस अध्याय से पता चलेगा कि किस तरह इन्द्र उनके पद को समझ सका।

एषां श्रियावलिप्तानां कृष्णेनाध्मापितात्मनाम् ।
धुनुत श्रीमदस्तम्भं पशून्नयत सङ्क्षयम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

एषाम्—उनके; श्रिया—ऐश्वर्य से; अवलिप्तानाम्—उन्मत्त; कृष्णेन—कृष्ण द्वारा; आध्मापित—सुरक्षित; आत्मनाम्—हृदयों वाले; धुनुत—हटा दो; श्री—उनके धन पर आधारित; मद—घमंड; स्तम्भम्—मिथ्याअभिमान; पशून्—पशुओं को; नयत—ले जाओ; सङ्क्षयम्—विनाश के कगार पर।

[इन्द्र ने सांवर्तक मेघों से कहा] : इन लोगों की सम्पन्नता ने इन्हें मदोन्मत्त बना दिया है और इनका अक्खड़पन कृष्ण द्वारा समर्थित है। अब तुम जाओ और उनके गर्व को चूर कर दो और उनके पशुओं का विनाश कर डालो।

तात्पर्य : इस श्लोक से स्पष्ट है कि वृन्दावनवासी एकमात्र गौवों की रक्षा करने से समृद्ध बन चुके थे क्योंकि इन्द्र सम्पत्ति पर आश्रित उनके तथाकथित गर्व को उनके पशुओं को मारकर चूर करना चाहता था। ठीक से चराई गई गौवें प्रचुर मात्रा में दूध देती हैं जिससे पनीर, मक्खन, दही, घी आदि प्राप्त होते हैं। ये स्वयं तो स्वादिष्ट भोजन हैं ही, फलों, तरकारियों तथा अन्नों को भी सुस्वादु बनाते हैं। मक्खन लगने से रोटी तथा तरकारी स्वादिष्ट बन जाती है और जब फलों के साथ मलाई या दही मिला दिया जाता है, तो वे क्षुधावर्धक बन जाते हैं। सभ्य समाज में दूध की बनी वस्तुओं का होना वाँछित है और यदि उपयोग के बाद ये वस्तुएँ बचें तो इनके बदले में अन्य मूल्यवान वस्तुएँ प्राप्त की जा सकती हैं। इस तरह वृन्दावनवासी वैदिक दुग्ध व्यवसाय से भौतिक दृष्टि से धनी, स्वस्थ तथा सुखी थे और उनमें से अधिकांश लोग भगवान् कृष्ण के नित्य संगी थे।

अहं चैरावतं नागमारुह्यानुव्रजे व्रजम् ।
मरुद्गणैर्महावेगैर्नन्दगोष्ठजिघांसया ॥ ७॥

शब्दार्थ

अहम्—मैं; च—भी; ऐरावतम्—ऐरावत नामक; नागम्—हाथी पर; आरुह्य—चढ़कर; अनुव्रजे—पीछे पीछे आऊँगा; व्रजम्—व्रज में; मरुत्-गणैः—वायुदेवों को साथ लेकर; महा-वेगैः—अत्यन्त वेग से चलने वाले; नन्द-गोष्ठ—नन्द महाराज के गोप समुदाय को; जिघांसया—विनष्ट करने के विचार से।

मैं अपने हाथी ऐरावत पर चढ़कर तथा अपने साथ वेगवान एवं शक्तिशाली वायुदेवों को लेकर नन्द महाराज के ग्वालों के ग्राम को विध्वंस करने के लिए तुम लोगों के पीछे रहूँगा।

तात्पर्य : इन्द्र के रोष से भयभीत सांवर्तक मेघों ने उसके आदेश का पालन किया जैसाकि अगले श्लोक में वर्णित है।

श्रीशुक उवाच
इत्थं मघवताज्ञप्ता मेघा निर्मुक्तबन्धनाः ।
नन्दगोकुलमासारैः पीडयामासुरोजसा ॥ ८॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; इत्थम्—इस प्रकार से; मघवता—इन्द्र द्वारा; आज्ञप्ताः—आदेश दिये गये; मेघाः—बादल; निर्मुक्त-बन्धनाः—अपने बन्धनों से मुक्त (यद्यपि संसार के विनाशकाल तक उन्हें वश में रहना था); नन्द-गोकुलम्—नन्द महाराज के चरागाहों पर; आसारैः—मूसलाधार वर्षा द्वारा; पीडयाम् आसुः—सताने लगे; ओजसा—अपनी शक्ति-भर।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इन्द्र के आदेश से प्रलयंकारी मेघ समय से पूर्व अपने बन्धनों से मुक्त होकर नन्द महाराज के चरागाहों पर गये। वहाँ वे व्रजवासियों पर मूसलाधार वर्षा करके उन्हें सताने लगे।

तात्पर्य : सांवर्तक मेघ समूची पृथ्वी पर एकमात्र विशाल सागर से छा सकते थे। इन मेघों ने महान् शक्ति के साथ व्रज की समतल भूमि को आप्लावित करना प्रारम्भ कर दिया।

विद्योतमाना विद्युद्भिः स्तनन्तः स्तनयित्नुभिः ।
तीव्रैर्मरुद्गणैर्नुन्ना ववृषुर्जलशर्कराः ॥ ९॥

शब्दार्थ

विद्योतमानाः—प्रकाशित होकर; विद्युद्भिः—बिजली की चमक से; स्तनन्तः—गरजते हुए; स्तनयित्नुभिः—गर्जन से; तीव्रैः—भयानक; मरुत्-गणैः—वायुदेवों द्वारा; नुन्नाः—कर्षित; ववृषुः—बरसाये; जल-शर्कराः—ओले।

भयानक वायुदेवों द्वारा उत्प्रेरित बादल बिजलियों की चमक से प्रज्ज्वलित हो उठे और

ओलों की वर्षा करते हुए कड़कड़ाहट के साथ गरजने लगे।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी की व्याख्या है कि *मरुद्-गणै* शब्द सात महान् वायुओं का सूचक हैं—यथा भुवर्लोक का अधिष्ठाता आवह तथा लोकों को स्थिर रखने वाला प्रवह।

स्थूणास्थूला वर्षधारा मुञ्चत्स्वभ्रेष्वभीक्ष्णशः ।
जलौघैः प्लाव्यमाना भूर्नादृश्यत नतोन्नतम् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

स्थूणा—ख भों के समान; स्थूलाः—स्थूल, मोटी; वर्ष-धाराः—वर्षा की धाराएँ; मुञ्चत्सु—छोड़ते हुए, गिराते हुए; अभ्रेषु—बादलों में; अभीक्ष्णशः—निरन्तर; जल-ओघैः—जल की बाढ़ से; प्लाव्यमाना—जलमग्न होकर; भूः—पृथ्वी; न अदृश्यत—दिखलाई नहीं पड़ती थी; नतौन्नतम्—नीची या ऊँची।

जब बादलों ने बड़े-बड़े ख भों जैसी मोटी वर्षा की धाराएँ गिराईं तो पृथ्वी बाढ़ से जलमग्न हो गई और ऊँची या नीची भूमि का पता नहीं चल पा रहा था।

अत्यासारातिवातेन पशवो जातवेपनाः ।
गोपा गोप्यश्च शीतार्ता गोविन्दं शरणं ययुः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

अति-आसार—मूसलाधार वर्षा से; अति-वातेन—तथा अत्यधिक हवा से; पशवः—गौवें तथा अन्य पशु; जात-वेपनाः—काँपते हुए; गोपाः—गोपगण; गोप्यः—गोपियाँ; च—भी; शीत—जाड़े से; आर्ताः—पीड़ित; गोविन्दम्—गोविन्द के पास; शरणम्—शरण के लिए; ययुः—गये।

अत्यधिक वर्षा तथा हवा के कारण काँपती हुई गौवें तथा अन्य पशु और शीत से पीड़ित ग्वाले तथा गोपियाँ—ये सभी शरण के लिए गोविन्द के पास पहुँचे।

शिरः सुतांश्च कायेन प्रच्छाद्यासारपीडिताः ।
वेपमाना भगवतः पादमूलमुपाययुः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

शिरः—अपने सिरों; सुतान्—अपने बालकों को; च—और; कायेन—अपने शरीरों से; प्रच्छाद्य—ढककर; आसार-पीडिताः—मूसलाधार वर्षा से पीड़ित; वेपमानाः—थरथराती; भगवतः—भगवान् के; पाद-मूलम्—चरणकमलों के नीचे; उपाययुः—पहुँची।

भीषण वर्षा से उत्पन्न पीड़ा से काँपती तथा अपने सिरों और अपने बछड़ों को अपने शरीरों से ढकने का प्रयास करती हुई गौवें भगवान् के चरणकमलों में जा पहुँचीं।

कृष्ण कृष्ण महाभाग त्वन्नाथं गोकुलं प्रभो ।

त्रातुमर्हसि देवान्नः कुपिताद्भक्तवत्सल ॥ १३॥

शब्दार्थ

कृष्ण कृष्ण—हे कृष्ण, हे कृष्ण; महा-भग—हे परम भाग्यशाली; त्वत्-नाथम्—अपने स्वामी; गो-कुलम्—गौवों के समुदाय को; प्रभो—हे स्वामी; त्रातुम् अर्हसि—रक्षा कीजिये; देवात्—इन्द्र देव से; नः—हमको; कुपितात्—कुपित; भक्त-वत्सल—हे भक्तों के वत्सल।

[गोपों तथा गोपियों ने भगवान् को सम्बोधित करते हुए कहा]: हे कृष्ण, हे भाग्यशाली कृष्ण, आप इन्द्र के क्रोध से इन गौवों को उबारें। हे प्रभु, आप अपने भक्तों पर इतने वत्सल हैं। कृपया आप हमें भी बचा लें।

तात्पर्य : कृष्णजन्म के समय गर्ग मुनि ने भविष्यवाणी की थी—*अनेन सर्वदुर्गाणि यूयम् अञ्जस् तरिष्यथ* (भागवत १०.८.१६)—इनकी कृपा से आप आसानी से सारे कष्टों को पार कर लेंगे। वृन्दावनवासियों को पूर्ण विश्वास था कि ऐसी भारी-विपत्ति में श्रीनारायण उनकी रक्षा करने के लिए कृष्ण को शक्ति प्रदान करेंगे। उन्होंने कृष्ण को सर्वस्व मान रखा था और कृष्ण उनके प्रेम को अंगीकार कर चुके थे।

शिलावर्षातिवातेन हन्यमानमचेतनम् ।
निरीक्ष्य भगवान्मेने कुपितेन्द्रकृतं हरिः ॥ १४॥

शब्दार्थ

शिला—उपलों (ओलों) की; वर्ष—वर्षा द्वारा; अति-वातेन—तथा तेज हवा द्वारा; हन्यमानम्—प्रताड़ित; अचेतनम्—अचेत; निरीक्ष्य—देखकर; भगवान्—भगवान्; मेने—विचार किया; कुपित—क्रुद्ध; इन्द्र—इन्द्र द्वारा; कृतम्—किया गया; हरिः—हरि ने।

ओलों तथा तेज वायु के प्रहार से अचेत हुए जैसे गोकुलवासियों को देखकर भगवान् हरि समझ गये कि यह कुपित इन्द्र की करतूत है।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर का कहना है कि इन्द्र ने वृन्दावनवासियों पर जो कहर ढाया वह भगवान् कृष्ण तथा व्रजवासियों के प्रेम-व्यापार को बढ़ाने के लिए कृष्ण की लीलाशक्ति द्वारा नियोजित था। भूखे व्यक्ति का दृष्टान्त देते हुए आचार्य कहते हैं कि भूख की पीड़ा से उस सुख में वृद्धि होती है, जो उसे उत्तम भोजन खाने पर मिलता है। इस तरह भूख से भोजन करने का आनन्द बढ़ जाता है। इसी प्रकार वृन्दावनवासियों को यद्यपि सामान्य भौतिक चिन्ता का अनुभव नहीं हो रहा था किन्तु इन्द्र के कार्यों से आन्तरिक पीड़ा पहुँच रही थी जिससे कृष्ण के ध्यान में तीव्रता बढ़ी। और जब भगवान् ने कर दिखाया तो परिणाम अद्भुत निकला।

अपर्त्वत्युल्बणं वर्षमतिवातं शिलामयम् ।
स्वयागे विहतेऽस्माभिरिन्द्रो नाशाय वर्षति ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

अप-ऋतु—ऋतु के बिना; अति-उल्बणम्—घनघोर; वर्षम्—वर्षा; अति-वातम्—तेज हवा सहित; शिला-मयम्—ओलों से पूर्ण; स्व-यगे—अपना यज्ञ; विहते—रोक दिये जाने से; अस्माभिः—हमारे द्वारा; इन्द्रः—इन्द्र; नाशाय—विनाश के लिए; वर्षति—वर्षा कर रहा है।

[श्रीकृष्ण ने अपने आप कहा]: चूँकि हमने उसका यज्ञ रोक दिया है, अतः इन्द्र अति प्रचण्ड हवा और ओलों के साथ घनघोर एवं बिना ऋतु की वर्षा कर रहा है।

तत्र प्रतिविधिं सम्यगात्मयोगेन साधये ।
लोकेशमानिनां मौढ्याद्धनिष्ये श्रीमदं तमः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

तत्र—इस दशा में; प्रति-विधिम्—सामना करने के उपाय; सम्यक्—समुचित रीति से; आत्म-योगेन—अपनी योगशक्ति से; साधये—व्यवस्था करूँगा; लोक-ईश—संसार के स्वामी; मानिनाम्—झूठे ही अपने को मानने वाले; मौढ्यात्—मूर्खतावश; हनिष्ये—पराजित करूँगा; श्री-मदम्—ऐश्वर्य से उत्पन्न गर्व को; तमः—अज्ञान।

मैं अपनी योगशक्ति से इन्द्र द्वारा उत्पन्न इस उत्पात का पूरी तरह सामना करूँगा। इन्द्र जैसे देवता अपने ऐश्वर्य का घमंड करते हैं और मूर्खतावश वे झूठे ही अपने को ब्रह्माण्ड का स्वामी समझने लगते हैं। मैं अब ऐसे अज्ञान को नष्ट कर दूँगा।

न हि सद्भावयुक्तानां सुराणामीशविस्मयः ।
मत्तोऽसतां मानभङ्गः प्रशमायोपकल्पते ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; हि—निश्चय ही; सत्-भाव—सतोगुण से; युक्तानाम्—युक्त; सुराणाम्—देवताओं के; ईश—नियन्ता; विस्मयः—झूठी पहचान; मत्तः—मुझसे; असताम्—अशुद्ध; मान—मिथ्या अभिमान का; भङ्गः—समूल विनाश; प्रशमाय—उन्हें राहत दिलाने के लिए; उपकल्पते—इच्छा है।

चूँकि देवता सतोगुण से युक्त होते हैं अतः अपने को स्वामी मानने का मिथ्या अभिमान उनमें बिल्कुल नहीं आना चाहिए। जब मैं सतोगुण से विहीन उनके मिथ्या अभिमान को भंग करता हूँ तो मेरा उद्देश्य उन्हें राहत दिलाना होता है।

तात्पर्य : देवताओं को *सद्भावयुक्त* माना जाता है क्योंकि वे भगवान् द्वारा नियुक्त सेवक होते हैं। *भगवद्गीता* (४.२४) में कहा गया है–

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हर्विब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।

ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना॥

''भगवान् को समुचित रीति से दी गई भेंट आध्यात्मिक बन जाती है।'' देवतागण ब्रह्माण्ड के प्रशासन में विविध विभागों का कार्यभार सँभालकर भगवान् की भक्ति में लगे रहते हैं। अतएव देवताओं या भगवान् के सेवकों के रूप में उनका अस्तित्व शुद्ध होता है (*सद्भाव*)। जब देवतागण भगवान् द्वारा प्रदत्त उच्च पद के अनुरूप नहीं रह पाते और अपने समुचित व्यवहार से विपथ होते हैं, तो वे देवताओं के रूप में कार्य न करके बद्धजीवों जैसा कार्य करते हैं।

मान अर्थात् मिथ्या प्रतिष्ठा निश्चय ही बद्धात्मा के लिए चिन्ता से युक्त भार होती है। मिथ्या अहंकारी व्यक्ति कभी शान्त या संतुष्ट नहीं रहता क्योंकि वह अपने विषय में मिथ्या तथा अतिशयोक्तिपूर्ण बोध रखता है। जब भगवान् का सेवक *असत्* अर्थात् अधर्मी बन जाता है, तो भगवान् उसके मिथ्या गर्व को चूर करके उसे अधर्म से बचाते हैं जिसके कारण वह अपराधी या पापी बनता है। भगवान् ने स्वयं कहा है— *यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनै*—मैं मनुष्य का तथाकथित ऐश्वर्य हर कर उसे आशीर्वाद देता हूँ।

जैसाकि रूप गोस्वामी ने बतलाया है भगवद्भक्ति की उन्नत अवस्था *युक्तवैराग्य* है, जिसमें इस संसार के ऐश्वर्य का सदुपयोग भगवान् के मिशन को पूरा करना होता है। स्पष्ट है कि इस संसार की सारी वस्तुएँ भगवान् की महिमा का प्रसार करने और सत्समाज की सृष्टि करने में बड़े आश्चर्यजनक ढंग से प्रयुक्त की जा सकती हैं। अत्यधिक उन्नत भक्त कभी भी भौतिक साज-सामान से ठगा नहीं जाता अपितु वह इसका सदुपयोग भगवान् के आनन्द हेतु अपना कर्तव्य मान कर ईमानदारी से करता है। यहाँ पर, इन्द्र यह भूल गया कि वह ईश्वर का विनीत सेवक है इसीलिए कृष्ण ने इस मोहग्रस्त देवता को पाठ पढ़ाना चाहा।

तस्मान्मच्छरणं गोष्ठं मन्नाथं मत्परिग्रहम् ।
गोपाये स्वात्मयोगेन सोऽयं मे व्रत आहितः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—इसलिए; मत्-शरणम्—मेरी शरण में आया हुआ; गोष्ठम्—गोप समुदाय; मत्-नाथम्—मुझको अपना स्वामी मानकर; मत्-परिग्रहम्—मेरा ही परिवार; गोपाये—मैं रक्षा करूँगा; स्व-आत्म-योगेन—अपनी योगशक्ति द्वारा; सः अयम्—यह; मे—मेरे द्वारा; व्रतः—व्रत, प्रण; आहितः—लिया गया है।

अतएव मुझे अपनी दिव्यशक्ति से गोप समुदाय की रक्षा करनी चाहिए क्योंकि मैं ही उनका

आश्रय हूँ, मैं ही उनका स्वामी हूँ और वे मेरे अपने परिवार के ही हैं। मैंने अपने भक्तों की रक्षा का व्रत जो ले रखा है।

तात्पर्य : *मच्छरणम्* शब्द न केवल यह सूचित करता है कि कृष्ण व्रजजन के एकमात्र आश्रय थे अपितु यह भी कि कृष्ण ने उनके बीच अपना घर बना रखा था। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने *अनेकार्थ वर्ग* कोश से *शरणं गृहरक्षित्रो:* उद्धृत किया है। इस तरह *शरणं* शब्द घर या रक्षक का द्योतक हो सकता है। वृन्दावनवासियों ने कृष्ण को अपना प्रिय बालक, मित्र, प्रेमी तथा प्राण मान रखा था और भगवान् उनकी भावनाओं को जानते थे। इस तरह कृष्ण इन भाग्यशाली लोगों के बीच रहते हुए उनके घरों तथा खेतों में विचरण करते थे। स्वाभाविक है कि वे ऐसे घनिष्ट भक्तों की सभी प्रकार के संकटों से रक्षा करते।

इत्युक्त्वैकेन हस्तेन कृत्वा गोवर्धनाचलम् ।
दधार लीलया विष्णुश्छत्राकमिव बालक: ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; उक्त्वा—कहकर; एकेन—एक; हस्तेन—हाथ से; कृत्वा—लेकर; गोवर्धन-अचलम्—गोवर्धन पर्वत को; दधार—धारण कर लिया; लीलया—आसानी से; विष्णु:—भगवान् विष्णु ने; छत्राकम्—कुकुरमुत्ता; इव—के समान; बालक:—बालक।

यह कहकर साक्षात् विष्णु अर्थात् श्रीकृष्ण ने एक हाथ से गोवर्धन पर्वत को ऊपर उठा लिया जिस तरह कि कोई बालक कुकुरमुत्ते को उखाड़कर हाथ में ले लेता है।

तात्पर्य : *हरिवंश* में इसकी पुष्टि की गई है कि कृष्ण ने अपने बाएँ हाथ से गोवर्धन पर्वत को उठाया—*स धृत: सङ्कृतो मेघैर्गिरि: सव्येन पाणिना*—उन्होंने बाएँ हाथ से पर्वत उठा लिया जो बादलों को छू रहा था। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार जब कृष्ण गोवर्धन पर्वत उठाने जा रहे थे तो उनकी योग-मायाशक्ति की अंशरूपा संहारिकी ने आकाश से क्षण-भर के से बादलों को हटा दिया जिससे जब वे अपने घर के आगे से पर्वत तक तेजी से दौड़कर गये तो न तो उनका दुपट्टा भीजा न ही अन्य वस्त्र।

अथाह भगवान्गोपान्हेऽम्ब तात व्रजौकस: ।
यथोपजोषं विशत गिरिगर्तं सगोधना: ॥ २० ॥

शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात्; आह—बोले; भगवान्—भगवान्; गोपान्—गोपों से; हे—अरे; अम्ब—माता; तात—हे पिता; व्रज-ओकसः—अरे व्रजवासियो; यथा-उपजोषम्—जैसे तुम्हें रुचे; विशत—प्रवेश करो; गिरि—इस पर्वत के; गर्तम्—नीचे की खाली जगह में; स-गोधनाः—अपनी गौवों समेत।

तत्पश्चात् भगवान् ने गोप समुदाय को सम्बोधित किया: हे मैया, हे पिताश्री, हे व्रजवासियो, यदि चाहो तो अपनी गौवों समेत तुम अब इस पर्वत के नीचे आ जाओ।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने इस सम्बन्ध में यह अन्तर्दृष्टि प्रदान की है : सामान्यतया विशाल गो समुदाय जिसमें हजारों गौवें, बछड़े, साँड़ इत्यादि थे, गोवर्धन जैसे मध्यम आकार वाले पर्वत के नीचे नहीं आ सकता था। किन्तु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के हाथों का स्पर्श पाकर इस पर्वत ने हर्षातिरेक के कारण अचिन्त्य शक्ति प्राप्त कर ली और क्रुद्ध इन्द्र द्वारा किये गये हजारों वज्र के आघातों को कोमल सुगंधित फूलों की भेंट जैसा अनुभव किया। कभी कभी तो गोवर्धन को ऐसा लगता था कि वज्र का आघात हो भी रहा है या नहीं। आचार्य ने *हरिवंश* से स्वयं श्रीकृष्ण के वचनों को भी उद्धृत किया है—*त्रैलोक्यमप्युत्सहते रक्षितुं किं पुनर्व्रजम्*—यह गोवर्धन पर्वत तीनों लोकों को शरण दे सकता है, केवल व्रजभूमि की तो बात ही क्या!

जब इन्द्र का आक्रमण शुरू हुआ और कृष्ण ने पर्वत उठा लिया तो पर्वत के अगल-बगल खड़े मृग, जंगली सुअर तथा अन्य पशु एवं पक्षीगण पर्वत की चोटी पर चढ़ गये और उन्हें तनिक भी व्यथा का अनुभव नहीं हुआ।

न त्रास इह वः कार्यो मद्धस्ताद्रिनिपातनात् ।
वातवर्षभयेनालं तत्त्राणं विहितं हि वः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; त्रासः—भय; इह—इस बारे में; वः—तुम लोगों के द्वारा; कार्यः—अनुभव किया जाना चाहिए; मत्-हस्त—मेरे हाथ से; अद्रि—पर्वत के; निपातनात्—गिरने से; वात—वायु; वर्ष—तथा वर्षा के; भयेन—भय से; अलम्—पर्याप्त; तत्-त्राणम्—उससे रक्षा; विहितम्—प्रदान की गई है; हि—निश्चय ही; वः—तुम लोगों के लिए।

तुम्हें डरना नहीं चाहिए कि यह पर्वत मेरे हाथ से छूटकर गिर जायेगा। न ही तुम लोग हवा तथा वर्षा से भयभीत होओ क्योंकि इन कष्टों से तुम्हारे छुटकारे की व्यवस्था पहले ही की जा चुकी है।

तथा निर्विविशुर्गर्तं कृष्णाश्वासितमानसः ।

यथावकाशं सधनाः सव्रजाः सोपजीविनः ॥ २२॥

शब्दार्थ

तथा—इस प्रकार; निर्विविशुः—प्रवेश किया; गर्तम्—गढ़े में; कृष्ण—कृष्ण द्वारा; आश्वासित—आश्वासन दिये गये; मानसः—मन से; यथा-अवकाशम्—सुविधापूर्वक; स-धनाः—अपनी गौवों समेत; स-व्रजाः—तथा अपने छकड़ों समेत; स-उपजीविनः—अपने आश्रितों (यथा सेवकों तथा ब्राह्मणों) समेत।

इस प्रकार भगवान् कृष्ण द्वारा उनके मन आश्वस्त किये गये और वे सभी पर्वत के नीचे प्रविष्ट हुए जहाँ उन्हें अपने लिए तथा अपनी गौवों, छकड़ों, सेवकों तथा पुरोहितों के लिए और साथ ही साथ समुदाय के अन्य सदस्यों के लिए पर्याप्त स्थान मिल गया।

तात्पर्य : वृन्दावन के सारे घरेलू पशुओं को शरण दिलाने के लिए गोवर्धन पर्वत के नीचे ले जाया गया।

क्षुत्तृड्व्यथां सुखापेक्षां हित्वा तैर्व्रजवासिभिः ।
वीक्ष्यमाणो दधाराद्रिं सप्ताहं नाचलत्पदात् ॥ २३॥

शब्दार्थ

क्षुत्—भूख; तृट्—तथा प्यास; व्यथाम्—पीड़ा; सुख—सुख का; अपेक्षाम्—सारा विचार; हित्वा—ताक पर रखकर; तैः—उन; व्रज-वासिभिः—व्रजवासियों के द्वारा; वीक्ष्यमाणः—देखे जाकर; दधार—धारण किये रहे; अद्रिम्—पर्वत को; सप्त-अहम्—सात दिनों तक; न अचलत्—हिले-डुले नहीं; पदात्—उस स्थान से।

भूख तथा प्यास भूलकर और अपनी सारी व्यक्तिगत सुविधाओं को ताक पर रखकर भगवान् कृष्ण पर्वत को धारण किये हुए सात दिनों तक वहीं पर खड़े रहे और सारे व्रजवासी उन्हें निहारते रहे।

तात्पर्य : *विष्णु पुराण* के अनुसार—

व्रजैकवासिभिर्हर्ष विस्मिताक्षैर्निरीक्षितः

गोपगोपीजनैर्हृष्टै प्रीतिविस्फारितेक्षणै

संस्तूयमानचरितः कृष्णः शैलमधारयत्॥

''कृष्ण ने पर्वत को उठा लिया तो व्रजवासी उनकी प्रशंसा करने लगे। अब उन सबों को उनके साथ रहने का सुअवसर जो प्राप्त हुआ था और वे उन्हें प्रफुल्लित तथा चकित नेत्रों से निहार रहे थे। इस प्रकार सारे गोप तथा गोपियाँ प्रफुल्लित थे और स्नेहवश उन्होंने अपने नेत्रों को विस्फारित कर लिया।''

श्रीकृष्ण के सौन्दर्य तथा माधुर्य का निरन्तर अमृत-पान करते हुए व्रजवासियों को न तो भूख लगी,

न प्यास, न थकान। और कृष्ण भी उनके मनोहर रूपों को देख-देखकर खाना, पीना तथा सोना भूल गये। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर इंगित करते हैं कि सांवर्तक मेघों से सात दिनों तक लगातार वर्षा होने पर भी मथुरा जनपद में बाढ़ नहीं आई क्योंकि भगवान् अपनी माया से भूमि में गिरते ही जल को सुखा देते थे। इस प्रकार कृष्ण द्वारा गोवर्धन पर्वत का उठाया जाना मनोहारी विवरणों से भरा पड़ा है और हजारों वर्षों से सर्वाधिक प्रसिद्ध लीला बना रहा है।

कृष्णयोगानुभावं तं निशम्येन्द्रोऽतिविस्मितः ।
निस्तम्भो भ्रष्टसङ्कल्पः स्वान्मेघान्सन्न्यवारयत् ॥ २४॥

शब्दार्थ

कृष्ण—कृष्ण की; योग—योगशक्ति के; अनुभावम्—प्रभाव को; तम्—उस; निशम्य—देखकर; इन्द्रः—इन्द्र ने; अति-विस्मितः—अत्यन्त चकित; निस्तम्भः—मिथ्या गर्व के चूर होने से; भ्रष्ट—नष्ट; सङ्कल्पः—संकल्प वाला; स्वान्—अपने ही; मेघान्—मेघों को; सन्न्यवारयत्—रोक दिया।

जब इन्द्र ने कृष्ण की योगशक्ति के इस प्रदर्शन को देखा तो वह आश्चर्यचकित हो उठा। अपने मिथ्या गर्व के चूर होने से तथा अपने संकल्पों के नष्ट होने से उसने अपने बादलों को थम जाने का आदेश दिया।

खं व्यभ्रमुदितादित्यं वातवर्षं च दारुणम् ।
निशम्योपरतं गोपान्गोवर्धनधरोऽब्रवीत् ॥ २५॥

शब्दार्थ

खम्—आकाश को; वि-अभ्रम्—बादलों से रहित; उदित—उदय हुआ; आदित्यम्—सूर्य को; वात-वर्षम्—हवा तथा वर्षा को; च—तथा; दारुणम्—भयानक; निशम्य—देखकर; उपरतम्—बन्द किया हुआ; गोपान्—ग्वालों को; गोवर्धन-धरः—गोवर्धन पर्वत को उठाने वाला; अब्रवीत्—बोला।

यह देखकर कि अब भीषण हवा तथा वर्षा बन्द हो गई है, आकाश बादलों से रहित हो चुका है और सूर्य उदित हो आया है, गोवर्धनधारी कृष्ण ग्वाल समुदाय से इस प्रकार बोले।

निर्यात त्यजत त्रासं गोपाः सस्त्रीधनार्भकाः ।
उपारतं वातवर्षं व्युदप्रायाश्च निम्नगाः ॥ २६॥

शब्दार्थ

निर्यात—बाहर जाओ; त्यजत—छोड़ दो; त्रासम्—अपना भय; गोपाः—हे ग्वालो; स—सहित; स्त्री—अपनी स्त्रियों; धन—धन; अर्भकाः—तथा बालकों; उपारतम्—समाप्त हो गई; वात-वर्षम्—तेज हवा तथा वर्षा; वि-उद—जल से रहित; प्रायाः—लगभग; च—तथा; निम्नगाः—नदियाँ।

[भगवान् कृष्ण ने कहा]: हे गोपजनो, अब अपनी पत्नियों, बच्चों तथा सम्पदाओं समेत

बाहर निकल जाओ। अपना भय त्याग दो। तेज हवा तथा वर्षा रुक गई है और नदियों की बाढ़ का पानी उतर गया है।

ततस्ते निर्ययुर्गोपाः स्वं स्वमादाय गोधनम् ।
शकटोढोपकरणं स्त्रीबालस्थविराः शनैः ॥ २७॥

शब्दार्थ

ततः—तब; ते—वे; निर्ययुः—बाहर गये; गोपाः—गोपजन; स्वम् स्वम्—अपनी अपनी; आदाय—लेकर; गो-धनम्—अपनी गौवें; शकट—छकड़ों पर; ऊढ—लादकर; उपकरणम्—अपनी सामग्री; स्त्री—स्त्रियाँ; बाल—बालक; स्थविराः—तथा वृद्धजन; शनैः—धीरे धीरे।

अपनी अपनी गौवें समेट कर तथा अपनी सारी साज-सामग्री अपने छकड़ों में लाद कर सारे गोपजन बाहर चले आये। स्त्रियाँ, बच्चे तथा वृद्ध पुरुष धीरे धीरे उनके पीछे पीछे चल पड़े।

भगवानपि तं शैलं स्वस्थाने पूर्ववत्प्रभुः ।
पश्यतां सर्वभूतानां स्थापयामास लीलया ॥ २८॥

शब्दार्थ

भगवान्—भगवान्; अपि—भी; तम्—उस; शैलम्—पर्वत को; स्व-स्थाने—उसके स्थान पर; पूर्व-वत्—पहले की तरह; प्रभुः—सर्वशक्तिमान; पश्यताम्—देखते ही देखते; सर्व-भूतानाम्—समस्त प्राणियों के; स्थापयाम् आस—उन्होंने रख दिया; लीलया—सरलतापूर्वक।

सारे प्राणियों के देखते देखते भगवान् ने पर्वत को उसके मूल स्थान में रख दिया जिस तरह कि वह पहले खड़ा था।

तं प्रेमवेगान्निर्भृता व्रजौकसो
यथा समीयुः परिरम्भणादिभिः ।
गोप्यश्च सस्नेहमपूजयन्मुदा
दध्यक्षताद्भिर्युयुजुः सदाशिषः ॥ २९॥

शब्दार्थ

तम्—उनको; प्रेम—अपने शुद्ध प्रेम के; वेगात्—वेग से; निर्भृताः—पूर्ण हुए; व्रज-ओकसः—व्रजवासी; यथा—अपने अपने पद के अनुसार; समीयुः—आगे आये; परिरम्भण-आदिभिः—आलिंगन आदि द्वारा; गोप्यः—गोपियाँ; च—तथा; स-स्नेहम्—स्नेहपूर्वक; अपूजयन्—आदर किया; मुदा—प्रसन्नतापूर्वक; दधि—दही; अक्षत—समूचे चावल के दाने; अद्भिः—तथा जल से; युयुजुः—भेंट किया; सत्—उत्तम; आशिषः—आशीर्वाद।

वृन्दावन के सारे निवासी प्रेम से अभिभूत थे। उन्होंने आगे बढ़कर अपने अपने रिश्ते के अनुसार श्रीकृष्ण को बधाई दी—किसी ने उनको गले लगाया, तो कोई उनके समक्ष नतमस्तक हुआ इत्यादि-इत्यादि। गोपियों ने सम्मान के प्रतीकस्वरूप उन्हें दही तथा अक्षत, जौ मिलाया

हुआ जल अर्पित किया। उन्होंने कृष्ण पर आशीर्वादों की झड़ी लगा दी।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर विवेचना करते हुए लिखते हैं कि प्रत्येक वृन्दावनवासी कृष्ण को अपने-अपने ढंग से मानता था—कोई अपने को छोटा, कोई अपने को उनके समान तो कोई अपने को उनसे ज्येष्ठ मानता था और वे तदनुसार उनसे बर्ताव करते थे। कृष्ण से ज्येष्ठ लोगों ने उन्हें आशीर्वाद दिया, प्रेमपूर्वक उनके सिर को सूँघा, चूमा, उनके बाजुओं और उँगलियों को दबाया और स्नेहपूर्वक पूछा कि वे थके तो नहीं या कि उन्हें पीड़ा तो नहीं हुई। कृष्ण के समवयस्क उनके साथ हँसी-ठिठोली करने लगे और उनसे छोटे लोग उनके चरणों पर गिर पड़े और उनके पाँवों की मालिश करने लगे।

इस श्लोक में *च* शब्द बतलाता है कि गोपियों के साथ ब्राह्मणपत्नियों ने भी दही तथा अक्षत जैसी शुभ वस्तुएँ भेंट कीं। भगवान् कृष्ण को जो आशीर्वाद मिले वे इस प्रकार थे, ''आप दुष्टों का दमन करें, भद्र लोगों की रक्षा करें, अपने माता-पिता को आनन्द प्रदान करें और धन तथा वैभव से समृद्ध हों।''

यशोदा रोहिणी नन्दो रामश्च बलिनां वरः ।
कृष्णमालिङ्ग्य युयुजुराशिषः स्नेहकातराः ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

यशोदा—माता यशोदा; रोहिणी—रोहिणी; नन्दः—नन्द महाराज; रामः—बलराम ने; च—भी; बलिनाम्—बलवानों में; वरः—सर्वश्रेष्ठ; कृष्णम्—कृष्ण को; आलिङ्ग्य—चूमते हुए; युयुजुः—प्रदान किया; आशिषः—आशीर्वाद; स्नेह—स्नेह से; कातराः—अभिभूत।

माता यशोदा, रोहिणी, नन्द महाराज तथा बलिष्ठों में सर्वश्रेष्ठ बलराम ने कृष्ण को गले लगाया। स्नेहाभिभूत होकर उन सबों ने कृष्ण को अपने अपने आशीर्वाद दिये।

दिवि देवगणाः सिद्धाः साध्या गन्धर्वचारणाः ।
तुष्टुवुर्मुमुचुस्तुष्टाः पुष्पवर्षाणि पार्थिव ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

दिवि—स्वर्ग में; देव-गणाः—देवता लोग; सिद्धाः—सिद्धगण; साध्याः—साध्य जन; गन्धर्व-चारणाः—गन्धर्व तथा चारण जन; तुष्टुवुः—भगवान् की स्तुति की; मुमुचुः—विमोचन किया; तुष्टाः—तुष्ट हुए; पुष्प-वर्षाणि—फूलों की वर्षा; पार्थिव—हे राजा (परीक्षित)।

हे राजन्, स्वर्ग में सिद्धों, साध्यों, गन्धर्वों तथा चारणों समेत सारे देवताओं ने भगवान् कृष्ण

का यशोगान किया और अतीव संतोषपूर्वक उन पर फूलों की वर्षा की।

तात्पर्य : स्वर्ग में देवतागण उतने ही हर्षित थे जितना कि वृन्दावन के वासी। इस तरह महान् सार्वभौमिक उत्सव सम्पन्न हुआ।

शङ्खदुन्दुभयो नेदुर्दिवि देवप्रचोदिताः ।
जगुर्गन्धर्वपतयस्तुम्बुरुप्रमुखा नृप ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

शङ्ख—शंख; दुन्दुभयः—तथा दुन्दुभियाँ; नेदुः—बज उठीं; दिवि—स्वर्ग लोक में; देव-प्रचोदिताः—देवताओं द्वारा बजाई गईं; जगुः—गाया; गन्धर्व-पतयः—गन्धर्वों के मुखियों ने; तुम्बुरु-प्रमुखाः—तम्बुरु इत्यादि; नृप—हे राजन्।

हे परीक्षित, देवताओं ने स्वर्ग में जोर-जोर से शंख तथा दुन्दुभियाँ बजाईं और तुम्बुरु इत्यादि श्रेष्ठ गन्धर्व गीत गाने लगे।

ततोऽनुरक्तैः पशुपैः परिश्रितो
राजन्स्वगोष्ठं सबलोऽव्रजद्धरिः ।
तथाविधान्यस्य कृतानि गोपिका
गायन्त्य ईयुर्मुदिता हृदिस्पृशः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; अनुरक्तैः—प्रेमी; पशु-पैः—ग्वालबालों द्वारा; परिश्रितः—घिरे हुए; राजन्—हे राजन्; स्व-गोष्ठम्—जहाँ अपनी गौवें चरा रहे थे उसी स्थान में; स-बलः—बलराम सहित; अव्रजत्—गये; हरिः—कृष्ण; तथा-विधानि—इस तरह का (पर्वत का उठाना); अस्य—उनके; कृतानि—कार्यकलाप; गोपिकाः—गोपिकाएँ; गायन्त्यः—गाती हुई; ईयुः—गईं; मुदिताः—प्रसन्नतापूर्वक; हृदि-स्पृशः—हृदय को स्पर्श करने वाले का।

अपने प्रेमी ग्वालमित्रों तथा भगवान् बलराम से घिरे कृष्ण उस स्थान पर गये जहाँ वे अपनी गौवें चरा रहे थे। अपने हृदयों को स्पर्श करने वाले श्रीकृष्ण द्वारा गोवर्धन पर्वत के उठाये जाने तथा उनके द्वारा सम्पन्न किये गये यशस्वी कार्यों के विषय में सारी गोपियाँ प्रसन्नतापूर्वक गीत गाती अपने घरों को लौट गईं।

तात्पर्य : गोपियों ने अपने घरों को लौटने के पूर्व अपने प्रेमी श्रीकृष्ण से चुपके-चुपके आँखें चार कीं। सामान्यतया वे कृष्ण के विषय में खुलकर बातें नहीं कर सकती थीं क्योंकि वे धार्मिक गाँव की कुमारियाँ जो थीं। किन्तु अब उन्हें भगवान् द्वारा इस अद्भुत प्रदर्शन का अवसर प्राप्त हुआ तो उन्होंने मुक्त भाव से कृष्ण के मनोहारी का गायन किया। यह स्वाभाविक है कि एक नवयुवक किसी सुन्दर युवती के समक्ष अद्भुत कार्य करना चाहता है। गोपियाँ अतीव सुन्दर तथा शुद्ध हृदय वाली युवतियाँ

थीं और श्रीकृष्ण ने उनके समक्ष अत्यन्त अद्‌भुत कार्य सम्पन्न किए। फलस्वरूप वे उनके कोमल हृदयों में गहरे प्रवेश कर गये।

इस प्रकार श्रीमद्‌भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''कृष्ण द्वारा गोवर्धन-धारण'' नामक पच्चीसवें अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।